ROOTINDEXING
JOURNAL ABSTRACTING AND INDEXING SERVICE
INTERNATIONAL ADVANCE JOURNAL OF ENGINEERING, SCIENCE AND MANAGEMENT (IAJESM)
January-June 2023, Submitted in January 2023, iajesm2014@gmail.com, ISSN -2393-8048
Multidisciplinary Indexed/Peer Reviewed Journal. SJIF Impact Factor 2023 =6.753

गुप्तकाल में धार्मिक विकास में अतिथियों का सत्कार

डॉ0 सरोज शर्मा, सहायक आचार्य, एस.बी.एन.(पी.जी.), महाविद्यालय, सिद्धमुख

प्रस्तावित शोध की भूमिका

गुप्तकाल में अतिथियों का सत्कार, दान आदि अच्छे गुण देखने को मिलते है। इस समय भोजन सात्विक था। मद्यपान भी प्रचलन में नहीं था। चाण्डाल के अतिरिक्त कोई भी माँस, मछली, लहसुन, प्याज आदि का सेवन नहीं करते थे।

गुप्तकाल में धार्मिक विकास उच्च स्तरीय रहा। इस समय ब्राह्मण धर्म का पुनरूत्थान हुआ। गुप्त युग में नयी विचारधाराओं के प्रभाव के कारण वैदिक धर्म अपने पुराने रूप में जनता को आकर्षित नहीं कर सका। गुप्तकाल में ब्राह्मण धर्म की मूल भावना को सुरक्षित रखते हुए उसके स्वरूप में बहुत सारे परिवर्तन किये जिसके परिणामस्वरूप वैदिक (हिन्दू) धर्म का जन्म हुआ। इस समय वैष्णव धर्म तथा शैव धर्म भी काफी लोकप्रिय हुए। गुप्तकाल में देवी पूजा या शक्तिपूजा का भी प्रचलन था। इस समय सूर्य की उपासना भी की जाती थी। गुप्तकाल में जैन व बौद्ध धर्म भी भक्ति की धारा की चपेट मे आ गये थे। यद्यपि बौद्ध धर्म को गुप्त सम्राटों का राजकीय संरक्षण प्राप्त नहीं था किन्तु उदार धार्मिक नीति के कारण यह भी प्रगति पर था। प्रसिद्ध बौद्ध विहार नालन्दा की स्थापना भी गुप्त राजा कुमारगुप्त प्रथम के समय में ही हुआ था। गुप्त युग के धार्मिक जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष है सभी धर्मों की पारस्परिक सहिष्णुता एवं बढ़ती हुई समन्वयवादिता। धार्मिक मामलों में गुप्त राजा बड़े ही उदार थे। गुप्तकाल में मूर्तिपूजा और भक्ति की बढ़ती हुई परम्परा ने वैष्णव धर्म, शैवधर्म, बौद्धधर्म व जैनधर्म सभी को एक सूत्र में बांध रखा था।

गुप्तयुग में आर्थिक व्यवस्था काफी समृद्ध थी। इस समय आर्थिक जीवन के सभी पक्षों जैसे– कृषि, पशुपालन, उ़द्योग एवं षिल्प व व्यापार–वाणिज्य में काफी प्रगति हुई। गुप्तकाल में कृषि लोगों का मुख्य व्यवसाय था। कृषि अधिकांषतः वर्षा पर निर्भर थी। सुदर्षन झील का प्रयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। पशुपालन भी जीविका का एक प्रमुख साधन था। इस काल में धातु–षिल्प, वस्त्र–निर्माण, आभूषण–कला, काष्ठ–कला, हाथीदाँत का काम आदि उद्योग प्रगति पर थे। इस समय धातु–कला में काफी उन्नति हुई। इसके प्रमुख उदाहरण मैहरोली का लौह–स्तम्भ है जो आज भी बिना जंग लगे खड़ा है। गुप्तकाल में अनेक स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त हुई है जो विषुद्ध भी है, तथा कलात्मक भी है।

प्रस्तावित शोध के सोपान

ये गुप्तकाल की आर्थिक सम्पन्नता, कलात्मक सौन्दर्य का उदाहरण है। भारतीय इतिहास में सर्वाधिक सिक्के गुप्तकाल के है। सर्वप्रथम चन्द्रगुप्त प्रथम ने सिक्के प्रचलित किये जो कि सोने के थे। समुद्रगुप्त के समय मुद्राओं में विषेष उन्नति हुई जो कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट मानी जाती है। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सोने के साथ–साथ चांदी व ताँबे के सिक्कों का प्रचलन किया। गुप्त सम्राटों में सर्वाधिक सिक्के कुमारगुप्त प्रथम के समय प्रचलित हुए जो कि धन और वैभव का प्रतिबिम्ब है। स्कन्दगुप्त के काल से मुद्राओं की शुद्धता में कमी होने लगती है। गुप्तकाल में वस्त्र निर्माण भी एक प्रमुख उद्योग था। इस समय आभूषण बनाने का षिल्प भी उन्नत अवस्था में था। षिल्पी उद्यमी तथा व्यापारी संगठित थे और उन्होनें अपने–अपने संघ बना रखे थे। इन संघों को श्रेणी,'निगम' अथवा 'गण' कहा जाता था। जिसे चलाने के लिए उनके अपने नियम होते थे। आंतरिक व्यापार सड़कों और नदियों द्वारा होता था। गुप्तकाल में चीन के साथ भारत के विदेषी व्यापार में काफी वृद्धि हुई। गुप्त वंष के अन्तिम चरण में लम्बी दूरी के व्यापार में भी कमी आई तथा मुद्रा प्रणाली का भी पतन प्रारम्भ हो चुका था।

प्रस्तावित शोध का महत्व

गुप्त सम्राटों की निर्बलता के कारण बार–बार जो विदेषी आक्रमण हो रहे थे वे गुप्त सम्राटों के लिए घातक सिद्ध हुए और वह पतन की ओर चला गया। वस्तुतः छठी सदी के मध्य तक में गुप्त राजवंष प्रकृति के नियमानुसार काल–कवलित तो हो गया किन्तु उनके शासन से प्रभावित संस्थाओं की अविकल श्रृंखला आठवी सदी तक बनी रही। इसी समय उत्तर भारत में एक नये राजवंष का जन्म हुआ जिसका नाम पुष्यभूति वंष था। इस राजवंष के महान् राजा हर्ष के विषय में जानकारी के पर्याप्त साधन उपलब्ध है, किन्तु उसके पूर्व के राजाओं के विषय में जानकारी के साधनों का अभाव है। हमें हर्ष से सम्बन्धित साधनों से ही हर्ष के पूर्वजों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इन साधनों में हर्ष के ताम्रपत्रों एवं मुहरों का उल्लेख किया जा सकता है। अब तक हर्ष के दो ताम्रपात्र, प्रथम**बाँसखेडा**

SIS Scientific Indexing Services

ताम्रपत्र द्वितीय **मधुबन ताम्रपत्र** प्राप्त हुये है। हर्ष की दो मुहरें जो कि सोनापत व नालन्दा से प्राप्त हुई है। बाँसखेड़ा व मधुबन अभिलेखों से ही हमें पुष्यभूतियों की वंषावली प्राप्त होती है। इन ताम्रपत्रों से राजाओं की उपाधियाँ तथा धार्मिक मान्यताओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इन अभिलेखों में राज्यवर्धन की उपलब्धियों तथा उसकी मृत्यु के कारणों का भी संक्षिप्त परिचय मिलता है। हर्षवर्धन के दरबारी रत्न बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित में तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है।

प्रस्तावित शोध के उद्देष्य

1) हर्ष के अभिलेखों में तो इसका उल्लेख नहीं प्राप्त होता परन्तु बाणभट्ट ने अपने ग्रन्थ हर्षचरित में इसका उल्लेख किया है और पुष्यभूति को ही इस वंष का संस्थापक कहा है।
2) हर्षचरित के अनुसार श्री कण्ठ देष के अन्तर्गत थानेष्वर के पावन एवं समृद्धिषाली प्रदेष में पुष्यभूति नामक राजा हुआ जो षिव का अनन्य भक्त था और तीनों लोकों को अन्य देवताओं से शून्य समझता था।
3) पुष्यभूति की भांति उसकी प्रजा भी षिव भक्त थी। जिस प्रकार इन्द्र ने विविध प्रकार के रंगों वाला धनुष धारण किया था उसी प्रकार पुष्यभूति ने समस्त ब्राह्मण आदि वर्णों के नियमानुसार धनुष धारण किया।
4) कल्याण प्रकृति अर्थात श्रेय की भावना से भरा होने के कारण वह मानों कल्याण के सुमेरू से निर्मित था। पुष्यभूति लक्ष्मी के आकर्षण करने में मन्दाचल के समान, मर्यादा में समुद्र के समान, शब्द रूप यष को उत्पन्न करने में आकाष के समान, स्वाभाविक बातचीत करने में वेद के समान, सारे लोक के धारण करने में पृथ्वी के समान और राजाओं के रजोविकार दूर करने में वायु के समान, वाणी में बृहस्पति था, मन में विषाल था, तपस्या करने में जनक था।

प्रस्तावित शोध का निष्कर्ष

बड़े लोगों की बुद्धि स्वभाव से ही स्वतन्त्र और अपनी रूचि के अनुरोध पर चलने वाली होती है। जैसा कि पुष्यभूति की अनन्य भक्ति किसी के उपदेष के बिना सहज रूप में बाल्यकाल से ही भगवान शंकर में थी, जो भक्ति द्वारा सुलभ, संसार का भरण करने वाले भूतभावन और मौक्ष प्रदान करने वाले है। पुष्यभूति स्वप्न में भी षिव की पूजा किये कुछ भी नहीं खाता था। उसका मानना था कि षिव के अतिरिक्त इस संसार में कोई अन्य देवता नहीं है। पुरवासी, राज्य के कर्मचारी, मंत्री और भुजबल से पराजित होकर कर देने वाले बड़े–बड़े सामन्त भी भगवान षिव की पूजा के उपयोग में आने वाले उपहारों और भेटों से उसकी सेवा करते थे। जैसा कि कैलाष के षिखर के समान उज्जवल, सोने के पत्तरों से मढ़े सींग के अग्र भाग वाले एवं विषाल आकृतिवाले सन्ध्याकालीन पूजा के बैल, स्नान कराने के लिए सोने के कलसे, अर्ध्य के पात्र, धूप के पात्र, यज्ञोपवीत और षिवलिंग पर चढ़ाए जाने वाले मुखकोष को समर्पित करके लोग उसका मन सन्तुष्ट करते थे। देवमन्दिर को स्वयं लीपने से उनके हाथ लाल हो जाते थे। सब परिजन माला गूँथने में व्यस्त रहते थे। पुष्यभूति ने जब लोगों से सुना कि कोई भैरवाचार्य नामक महाषैव है, जो साक्षात् भगवान शंकर के दूसरे अवतार है और बहुत प्रकार की विद्याओं से प्रसिद्ध हजारों की संख्या में गुणों के समान अपने षिष्यों से सारे संसार में व्याप्त है। पुष्यभूति दूर होने पर भी साक्षात् षिव के समान भैरवाचार्य के प्रति सुनते ही अत्यधिक श्रद्धा करने लगा।

प्रस्तावित शोध के संदर्भ

1. गुप्त, पी. एल. (1995) : प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, विष्वविद्यालय प्रकाषन,वाराणसी।
2. गोयल, श्रीराम (1997) : प्राचीन भारत का इतिहास, कुसुमान्जलिप्रकाषन,जोधपुर।
3. गोयलीय, दयाचन्द्र (1917) : हिन्दुस्तान प्रयाग, काषी नागरीप्रचारिणीसभा, भारती भण्डार लीडर प्रेस, प्रयाग।
4. चटर्जी, गौरीशंकर (2008) : हर्षवर्द्धन, तृतीय संस्करण, हिन्दुस्तानीएकेडमी, इलाहाबाद।
5. तारानाथ (1993) : भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास, मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली।
6. थापर रोमिला (1995) : भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाषन, नईदिल्ली।